AGPE THE ROYAL GONDWANA RESEARCH JOURNAL
OF HISTORY, SCIENCE, ECONOMIC, POLITICAL AND SOCIAL SCIENCE
ISSN (E): 2583-1348 | A Peer reviewed | Open Accsess & Indexed
Volume 04 | Issue 03 | March 2023 | www.agpegondwanajournal.co.in | Page No. 102-111

शिक्षा के वैयाक्तिक एवं सामाजिक उद्देष्यों का सामंजस्य

डॉ. दीपक कुमार

शोधकर्ता- सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

प्राचार्य - कैम्ब्रीज शिक्षक प्रशिक्षण महाविधालय, कोडरमा, 825409 (झारखण्ड)

परिचय

मानव बड़ा है अथवा समाज ? यह प्रष्न प्राचीन काल मे ही विद्ववानों के समक्ष विचारणीय रहा है। कुछ विद्वान् समाज की उपेक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व पर बल देते हैं, को कुछ समाज के हित के समक्ष व्यक्ति को बिलकुल महत्वहीन मानते हुए उसे समाज की उन्नति के लिए बलिदान तक कर देने के पक्ष में हैं। इस वाद-विवाद के आधार पर की शिक्षा के व्यैक्तिक तथा सामाजिक उद्देष्यों का सर्जन हुआ है। शिक्षा सम्बन्धी सभी उदेष्य प्रायः इन्ही दोनों उद्देष्यों में से किसी एक उदेष्य के पक्ष में बल देते हैं। अब प्रष्न यह उठता है कि शिक्षा के इन दोनों उद्देषों में समन्वय स्थापित किया जा सकता है अथवा नहीं ? यदि अन्तर केवल बल देने का ही तो इन दोनों उद्देष्यों के बीच समन्वय स्थापित करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। परन्तु इसके लिए हमें निष्पक्ष रूप से इन दोनों उद्देष्यों के संकुचित तथा व्यापक रूपों का अलग-अलग अध्ययन करके यह देखना होगा कि इन दोनों उद्देष्यों में कोई वास्तविकता विरोध है अथवा केवल बल देने का अन्तर है।

व्यैक्तिक उद्देष्य का अर्थ

शिक्षा का व्यैक्तिक उद्देष्य एक प्राचीन उद्देष्य है। इस उद्देष्य के सार्थक समाज की अपेक्षा व्यक्ति को बड़ा मानते हैं। उसका विष्वास है कि व्यक्तियों के बिना समाज कोरी कल्पना है। व्यक्तियों ने ही मिलकर अपने हितों की रक्षा करने के लिए समाज की रचना की है तथा समय-समय पर संस्कृति, सभ्यता एवं विज्ञान के क्षेत्रों में भी अपना-अपना योगदान दिया है। इस योगदान के फलस्वरूप ही सामाजिक प्रगति का क्षेत्र बड़ा और बढ़ता चला जा रहा है। दुसरे शब्दों में, व्यक्ति के विकास से ही समाज का विकास हुआ तथा दिन-प्रतिदिन हो रहा है। अतः शिक्षा को व्यक्तिगत रूचियों, क्षमताओं तथा विषेषताओं का विकास करना चाहिए। इसीलिए कुछ-शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षा के व्यैक्तिक उद्देष्य का समर्थन किए है।

शिक्षा का व्यैक्तिक उद्देष्य नया उद्देष्य नहीं है। प्राचीनकाल में ग्रीस, भारत तथा अन्य पाष्चात्य देषों में भी शिक्षा के व्यैक्तिक उद्देष्य को प्रमुख स्थान दिया जाता था। मध्यकाल में अवष्य सामूहिक शिक्षा के ढंग को अपनाया गया जिसके कारण व्यक्तितत्व के विकास की ओर कोई

CORRESPONDING AUTHOR:	RESEARCH ARTICLE
Dr.Deepak Kumar Research Scholar-Singhaniya University Rajasthan Principal - Cambridge Teacher's Training College, Koderma, Jharkhand. Email: deepakarchana1172@gmail.com	

ध्यान नही दिया गया। इस उद्देष्य को पूरी तरह समझने के लिए इसके संकुचित तथा व्यापक अर्थों को समझना आवष्यक है।

व्यैक्तिक उद्देष्य

व्यैक्तिक उद्देष्य का संकुचित अर्थ-संकुचित अर्थ में शिक्षा के व्यैक्तिक उद्देष्य को आत्माभिव्यक्ति बालक की शक्तियों का सर्वांगीण विकास तथा प्राकृतिक विकास आदि नामों से पुकारा जाता है। इस अर्थ में यह उद्देष्य प्रकृतिवादी दर्षन पर आधारित है। इसके प्रतिपादकों का अटल विष्वास है कि समाज की अपेक्षा व्यक्ति बड़ा है। अतः उनकी धारणा है कि परिवार, समाज, राज्य तथा स्कूलों को बालक की व्यक्तिगत शक्तियों को विकसित करने के लिए ही स्थापित किया गया है। इस दृष्टि से प्रत्येक राज्य तथा सामाजिक संस्था का कत्र्तव्य है कि वह व्यक्ति के जीवन को अधिक से अधिक अच्छा, सम्पन्न तथा सुखी एवं पूर्ण बनाये।

इस उद्देष्य का प्रचार सबसे पहले प्रकृतिवादी दार्षनिक रूसो ने अपनी प्राकृतिक शिक्षा के द्वारा किया। उसने लिखा है- '' प्रत्येक व्यक्ति एक विषिष्ट स्वभाव को लेकर जन्म लेता है। हम बिना सोचे-समझे भिन्न-भिन्न रूचियों वाले बालकों को एक ही प्रकार के कार्यों में जुटा देते हैं। ऐसी शिक्षा उनकी विषेषताओं को नष्ट करके एक निर्जीव सामान्यता की छाप लगा देती है। अतः रूसो ने कृत्रिम समाज का खण्डन करते हुए इस बात पर बल दिया कि बालक की सम्पूर्ण शिक्षा का प्रबन्ध प्रकृति के अनुसार होना चाहिए। उसने यह भी बताया कि बालक का प्राकृतिक विकास उसी समय हो सकता है जब उसकी शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था उसकी रूचियों, रूझानों तथा आवष्यकताओं को ध्यान में रखकर की जायेगी। ऐसी दषा में सामूहिक षिक्षण तथा निष्चित पाठ्यक्रम का बहिष्कार करके व्यैक्तिक शिक्षा तथा लचीले पाठ्यक्रम का निर्माण करके समस्त षिक्षण-पद्वतियों को क्रिया के सिधान्तों पर आधारित करना चाहिये।

रूसो की भांति अन्य शिक्षा शास्त्रियों ने भी व्यक्तिक उद्देष्य के इसी अर्थ पर बल दिया परन्तु उन सब में टी0पी0 नन का प्रमुख स्थान है। नन ने अपनी पुस्तक एजुकेषनः इट्स डेटा एंड दी फस्ट प्रिन्सिपिल्स में व्यक्ति की व्यक्तिगत शक्तियों के विकास पर विशेष बल देते हुए लिखा है- ''मानव जगत में यदि कुछ भी अच्छाई आ सकती है तो वह व्यक्तिगत पुरूषों तथा स्त्रियों के स्वतंत्र प्रयासों के द्वारा ही आ सकती है। अतः शिक्षा का संगठन इस सत्य के आधार पर ही होना चाहिये''।

नन ने अपनी पुस्तक के दुसरे अध्याय में अपने विचार की पुष्टि करने के लिए प्राणी शास्त्र की सहायता लेते हुए लिखा है कि चूँकि प्रत्येक प्राणी अपने उच्चतक विकास के लिए प्रसास कर रहा है, इसलिए शिक्षा का व्यैक्तिक उद्देष्य प्रकृति के नियम के अनुकूल है। अतः नन के मतानुसार ''शिक्षा के प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी अवस्थायें प्राप्त होनी चाहिये जिनमें उसकी व्यैक्तिक का पूर्ण विकास हो सके''।

नन के विचार से विशेष प्रकार के व्यक्तित्व से ही संसार की उन्नति हो सकती है। अतः बालक को उसकी मूल प्रवृतियों के अनुसार विकसित होने की पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिये। किसी भी बालक को ऐसा कार्य करने के लिए विवष करना उचित नहीं है जिसको करने के लिए वह बना ही नही है। यदि बालक की रूचियों तथा मूल प्रावृतियों की अवहेलना करके उस पर सामाजिक नियमों को बल-पूर्वक थोपा जायेगा तो उसका विषेष व्यक्तित्तव कुण्ठित हो जायेगा। अतः प्रत्येक माता-पिता, षिक्षक, समाज तथा राज्य का कत्र्तव्य है कि वह प्रत्येक बालक की शिक्षा की व्यवस्था उसके विषेष व्यक्तित्व के विकास को दृष्टि में रखते हुए करे जिससे वह अपनी इच्छानुसार विकसित हो सके। इस प्रकार संकुचित अर्थ में शिक्षा के व्यैक्तिक उद्देष्य का आषय आत्माभिव्यक्ति अथवा प्राकृतिक विकास है।

व्यैक्तिक उद्देष्य का व्यापक अर्थ

व्यापक अर्थ में शिक्षा व्यैक्तिक उद्देष्य हमारे सामने आत्मानुभूति के रूप में प्रकट होता है। मनोविज्ञान भी व्यक्तित्व के विकास के व्यापक अर्थ का समर्थन करता है। आधुनिक मनोविज्ञानिक प्रयोगों ने यह सिद्व कर दिया है कि प्रत्येक बालक एक दुसरे से शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा संवेगात्मक दृष्टी से भिन्न होता है। यह भिन्नता रूचियों, शक्तियों विचारों तथा कार्य करने की क्षमता में भी होती है। यही नहीं, प्रत्येक बालक की सामान्य बुद्वि, जीवन के आदर्ष तथा कार्य करने की गति करने की गति से भी महान होता है। किसी बालक

की बुद्वि मन्द होती है, तो किसी की प्रखर। ऐसे ही एक बालक शारीरिक कार्य करने में रूचि लेता है तो दूसरा मानसिक कार्य को करना अधिक पसन्द करता है। इसी प्रकार कोई बालक किसी अमुक कार्य को जल्दी समाप्त कर लेता है तो उसी कार्य को दूसरा बालक देरी से कर पाता है। इस प्रकार हम देखते हैं की कोई से दो बालक प्रत्येक दृष्टि से एक से एक नहीं हो सकते।

बुद्वि तथा योगयताओं के इन भेदों को दृष्टि में रखते हुए प्रत्येक बालक के लिए एकसा कठोर पाठ्यक्रम बनाकर सबको एक ही प्रकार की शिक्षा प्रदान करना अपनोवैज्ञानिक है। ऐसा करने से बालकों का समुचित विकास नहीं हो सकता। यदि प्रत्येक बालक के व्यक्तित्व का उतम विकास करना है तो व्यक्तिगत के सिद्वांत को दृष्टि में रखना होगा। अतः प्रत्येक स्कूल का कर्त्तव्य है कि वह बालक की रूचियों, आवष्यकताओं तथा योग्यताओं को दृष्टि में रखते हुए उसके समक्ष ऐसे अवसर प्रदान करे जिनके आधार पर उसकी मूल-प्रवृतियों निखर जायें तथा उसकी समस्त शक्तियों एवं गुणों का समुचित विकास हो कर वह एक उत्तम व्यक्ति बन जाये। दुसरे शब्दों में, शिक्षा की व्यवस्था बालकों की आवष्यकताओं तथा समाज के कल्याण को ध्यान में रख कर होनी चाहिए। माता-पिता भी अपने बालकों को स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने इसीलिए भेजते हैं कि उनके बालक शिक्षा प्राप्त करने के पष्चात जब बड़े होकर समाज में प्रवेष करें तो ये उपयोगी नागरिकों के रूप में समाज के विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय रूप से भाग लेकर अपना-अपना भार स्वंय वहन कर सकें। इससे व्यक्ति तथा समाज दोनों का कल्याण सम्भव है। नन ने इसी विचार की पुष्टि करते हुए लिखा है- ‘‘शिक्षा बालक को इस प्रकार से सहायता प्रदान करे कि वह समाज में अथवा मानवीय जीवन को अपनी योग्यतानुसार मौलिक योगदान दे सके। ’’

उपर्युक्त आषय की पूर्ति के लिए नन के मतानुसार समाज, राज्य तथा शिक्षा संस्थाओं को बालक की रूचिओं तथा प्रवृतियों को सामाजिक आवष्यकताओं के अनुसार विकसित करना चाहिये जिससे उसके व्यक्तित्व का उच्चतम विकास हो जाये तथा वह बड़ा हो कर आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सके।

नन का अपनी पुस्तक के द्वितीय अध्याय में शिक्षा के व्यैक्तिक उद्देष्य की पुष्टि करने के लिए जीवविज्ञान का सहारा लेना तथा यह कहना कि प्रत्येक वस्तु अपनी प्रकृति के अनुसार पूर्णाता प्राप्त करती है, उसके प्रकृतिवादी होने का संकेत करती है। ध्यान देने की बात है कि नन ने व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग प्रयोग इस प्रकार से किया है कि लोग भ्रम में पड़ जाते हैं। वास्तविकता यह है कि कोई भी व्यक्ति स्वंय में पूर्ण नहीं होता। वह समाज में रहता है, समाज का प्रतिनिधित्व करता है तथा समाज का ही अभिन्न अंग है। यदि व्यक्ति को समाज से प्रथक कर दिया जाये तो वह किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं कर सकता है।

नन के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तित्त्व के विकास से उसका तात्पर्य आत्माभिव्यक्ति न होकर आत्म-बोध अथवा आत्माभिव्यक्ति है। आत्मभिव्यक्ति में आत्म-प्रकाषन की भावना प्रधान होती है। इससे व्यक्ति अपनी मूल-प्रवृतियों के वषीभूत होकर बिना किसी रोक-टोक के स्वछंद रूप से कार्य करता है। वह यह नहीं देखता की उसकी क्रियाओं में समाज का क्या तथा कितनी हानि हो सकती है। इसके विपरीत आत्म-अनुभूति में आत्म वह आदर्ष आत्म है जिसकी हम कल्पना करते हैं तथा जिसकी अनुभूति केवल दूसरों की रूचियों को ध्यान में रखते हुए ही की जा सकती है। आत्म-अनुभूति में व्यक्ति समाज की सेवा करना अपना परम कत्तव्य समझता है।

उसकी आत्मा को ऐसे कार्यों के करने में सुख और शान्ति प्राप्त होती है जिनसे समाज का लाभ होता है। इस प्रकार व्यापक अर्थ में शिक्षा के व्यैक्तिक उद्देष्य का आषय आत्म-अनुभूति है। चूँकि आत्म-अनुभूति से आत्म का ज्ञान केवल समाज के ही माध्यम से हो सकता है इसलिए व्यक्ति से आषा की जाती है कि यह समाजिक हितों को ध्यान में रखते हुए अपना अधिक से अधिक विकास करे तथा समाज को यषाषक्ति मौलिक योगदान दे। जे0एम0 रौस ने भी इसी विचार की पुष्टि करते हुए लिखा है- ‘‘ नन के व्यक्तित्व शब्द का अर्थ उस आदर्ष से है जिसको अभी प्राप्त करने के लिए व्यक्ति प्रयत्न कर रहा है। जिसको अभी प्राप्त नहीं किया गया है अपितु प्रयत्न करके प्राप्त किया जा सकता है।

नन के विचारधारा के सामान यूकेन ने भी लिखा है शिक्षा में व्यक्तिवाद का समर्थन किया है। परन्तु उसने व्यैक्तिकता को जैविकीय अर्थ से मुक्त करते हुए आध्यात्मिक अर्थ दिया है। यूकेन का कथन है- ‘‘ हमरे जीवन का मुख्य कार्य अपने सच्चे स्वरूप को विकसित

करना और व्यक्तित्व तथा अध्यात्मिक व्यक्तित्व के परिवर्तन से इस स्वरूप को निखारना होता है। प्रत्येक व्यक्ति के सामने सत्य पूर्ण व्यक्तित्व तथा अध्यात्मिक व्यक्तित्व के निर्माण का काग्य जीवन भर होता रहता है।''

यूकेन का अटल विष्वास था कि अध्यात्मिक व्यैक्तिकता तथा व्यैक्तिकता जन्मजात नहीं होती। हम में केवल व्यक्तित्व का निर्माण करने की शक्ति होती है। जे0एम0 रौस ने भी यूकेन के इस मत का समर्थन करते हुए लिखा है-'' यूकेन के विष्वास से हम भी सहमत हैं कि जीवन की भांति शिक्षा का उद्देष्य व्यतित्त्व का उन्नयन है।''

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि व्यापक अर्थ में व्यक्तित्व के विकास का अर्थ यह है कि हमारे व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हमारे द्वारा दिये गये कर्मों पर निर्भर होता है। शिक्षा के द्वारा हम अपने व्यक्तित्व का इतना उँचा उठायें कि हम विष्व की सर्वोच्च सत्ता से साथ एक रूप हो सकें। व्यक्ति के विकास की इस अवस्था को आत्म-साक्षात्कार, आत्मबोध, आत्म-अनुभूति की संज्ञा दी जाती है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए शिक्षा का उद्देष्य भी व्यक्तिकता का विकास होना चाहिये।

शिक्षा के सामाजिक उद्देष्य का अर्थ

शिक्षा के सामाजिक उद्देष्य का जन्म शिक्षा के व्यैक्तिक उद्देष्य की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप हुआ है। इस उद्देष्य के समर्थक व्यक्ति की उपेक्षा समाज को ऊँचा मानते है। उनका अटल विष्वास है कि व्यक्ति स्वभाव से सामाजिक प्राणी है। यदि उसे समाज से प्रथक कर दिया जाये। उसका जीवन रहना कठिन हो जायेगा। प्रत्येक बालक समाज में ही जन्म लेता है तथा समाज में ही उसका पालन-पोषण होता है। समाज में ही रहते हुए वह बोलना-चलना, पढना-लिखना तथा दुसरे व्यक्तियों से व्यवहार करना सीखता है। समाज में ही रहते हुए उसकी विभिन्न आवष्यकतायें पूरी होती हैं तथा विभिन्न विचारों के आदान-प्रदान द्वारा उसके व्यक्तित्व का विकास होता है समाज की उन्नति से वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करता है तथा समाज की हानि से उसे भी क्षति पहुँचती है। इस प्रकार अपने सम्पूर्ण विकास के लिए वह समाज का ऋणी है। इस ऋण को चुकाना उसका कत्र्तव्य है। अतः शिक्षा की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये जिसके द्वारा समाज दिन-प्रतिदिन उन्नति के षिखर पर चढ़ता रहे। दुसरे शब्दों में, शिक्षा के उद्देष्यों का निर्माण समाज की तत्कालीन आवष्यकताओं के अनुरूप होना चाहिये। इसीलिए कुछ शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा के सामाजिक उद्देष्य पर बल दिया है। प्रसिद्व शिक्षाषास्त्री रेमांट के अनुसार- ''जो विद्वान व्यक्ति को समाज के उपर स्थान देते हैं, उनको स्मरण रखना चाहिये कि निःसमाज व्यक्ति कोरी कल्पना है। अतः शिक्षा का उद्देष्य व्यक्तिगत चरित्रगठन के साथ-साथ बालक को सच्चा सामाजिक प्राणी तथा नागरिक बनाना है।''

शिक्षा के सामाजिक उद्देष्य से समाजवाद का जन्म हुआ। साधारणतया समाज के दो रूप माने जाते है- (1) राष्ट्र-समाजवाद, तथा (2) जन्तात्रत्मक समाजवाद। अग्रलिखित पंक्तियों में हम समाजवाद के इन दोनों रूपांे पर प्रकाष डालते हुए सामाजिक उद्देष्य के संकुचती तथा व्यापाक अर्थों पर प्रकाष डाल रहे हैं -

सामाजिक उद्देष्य का संकुचित अर्थ

समाजवाद के उग्र रूप में सामाजिक उद्देष्य के संकुचित अर्थ पर बल दिया जाता है। ध्यान देने की बात है कि समाजवाद के उग्र रूप में राज्य एक आदर्ष रूपी भौतिक सत्ता है, जो व्यक्ति से कहीं ऊँचा तथा हर प्रकार से उत्कृष्ट है एवं उसकी सब आकांक्षाओं और इच्छाओं से ऊपर है। दुसरे शब्दों में, व्यक्ति की अपेक्षा समाज अथवा राष्ट्र हर हालत में बड़ा है। इस दृष्टि से व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र की भलाई के लिए हैं, न कि राष्ट्र व्यक्ति के लिए है। अतः राष्ट्र का अधिकार है कि वह अपनी इच्छाओं, आवष्यकताओं तथा आदर्षों की पूर्ति के लिए व्यक्ति को जैसा चाहे बनाये तथा शिक्षा के द्वारा बालकों को जिस सांचे में ढालना चाहे, ढाले। प्रत्येक व्यक्ति का यह पुनीत कत्र्तव्य है कि वह राष्ट्र की सत्ता को बढ़ाने के लिए अपनी सत्ता को बढ़ाने के लिए अपनी सत्ता को मिटा दे तथा तन और मन से उसकी

सेवा करके उसे सबल तथा सुहढ़ बनाये। जिस व्यक्ति रो राष्ट्र का कोई लाभ नहीं होता, वह राष्ट्र के लिए केवल भार सामान है। अतः उसका जीवन बिलकुल व्यर्थ है। इस प्रकार सामान्य रूप से जीवन का तथा विषिष्ट रूप से शिक्षा का लक्ष्य राष्ट्र का कल्याण करना है।

राष्ट्र के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है। अतः सामाजिक उद्देष्य के संकुचित अर्थ में राष्ट्र स्वंय की शिक्षा की एक सुनिष्चित प्रणाली बनाकर लागू करता है। यही नहीं, पाठ्यक्रम, षिक्षण-पद्वतियों एवं अनुषासन को भी इसी प्रकार से आयोजित करता है कि व्यक्ति की इच्छाओं तथा आकांक्षाओं का संकुचन भी हो जाये और उसमे आज्ञा-पालन, अनुषासन, संगठन तथा अपार भक्ति के ऐसे भाव भी विकसित हो जायें कि वह राष्ट्र कल्याण हेतु अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दे। कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा का सामाजिक उद्देष्य अपने संकुचित अर्थ मंे राज्य अथवा राष्ट्र को ही सबसे ऊँची सत्ता मानता है। इसके अनुसार मानव की स्वतंत्रता का दमन करके मानवीय जीवन से प्रत्येक अंग का पूर्णरूपेण समाजीकरण कर दिया जाता है। चूँकि समस्त सत्ता राष्ट्र के हाथों में आ जाती है इसलिए व्यक्ति अपने निजित्व के विकास हेतु स्वप्न भी नहीं देख सकता है। उससे केवल यही आषा की जाती है कि वह राष्ट्र की आवष्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दे।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि विभिन्न राष्ट्रों ने अपनी-अपनी आवष्यकताओं तथा आदर्षों को दृष्टि में रखते हुए सामाजिक उद्देष्य के सकुचति रूप को ही स्वीकार किया। प्राचीन स्पार्टा राज्य इस सम्बन्ध मंे सबसे ज्वलंत उदाहरण है। स्पार्टा एक छोटा सा नगर था जो चारों ओर से शत्रु राज्यों से घिरा हुआ था। उस राज्य को यह भय था कि कोई शत्रु-राज्य उस पर टूट कर उसका अस्तित्व ही नष्ट न कर दे। अतः स्पार्टा में सामाजिक उद्देष्य के इसी संकुचित अर्थ को अपनाया गया। फलस्वरूप वहाँ के व्यक्तियों को ऐसे सांचे में ढाला गया, जिससे वे स्वतंत्रता पूर्वक चिन्तन तथ मनन न कर सकें अपितु बहादुर और साहसी सैनिक बनकर राज्य की रक्षा के लिए अपने जीवन की बाजी लगा दें। इसीलिए स्पार्टा राज्य में शारीरिक दृष्टि से शक्तिहीन बालकों का कोई स्थान नहीं था। स्कूलों में ऐसा प्रषिक्षण दिया जाता था जिसका लक्ष्य उन्हें सैनिक आदेषों का पालन करना, परिश्रमी बनाना, लड़ना तथा विजय प्राप्त करना सिखलाता था। दुसरे शब्दों में, बालकों को इतनी ही शिक्षा दी जाती थी, जितनी राज्य उसके लिए आवष्यक समझता था। साहित्य सम्बन्धी शिक्षा केवल कानून को याद करने तक ही सीमित थी। ऐसे ही संगीत में केवल होमर के देष भक्ति वाले गीत गवाये जाते थे। बालिकाओं को भी बालकों के समान शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर दिए जाते थे।

जर्मनी ने भी गत वर्षों में राज्य की सर्वोच्चता के सिद्वान्त को स्वीकार किया था। जर्मनी के प्रसिद्व शिक्षाषास्त्री फिस्ते ने अपने राज्य के निवासियों को दिये गये भाषणों में इसी बात की पुष्टि की कि शिक्षा के द्वारा ही राज्य अपने आपको पुनजीवित कर सकता है। उसने इस बात पर भी बल दिया की केवल शिक्षा ही हमें उन बुराईयों से बचा सकती है, जो हमें आज तंग कर रही है। अतः फिस्ते ने अपने भाषणों द्वारा प्रत्येक जर्मनी-निवासी के मस्तिष्क में यह बात कूट-कूट कर भर दी कि व्यक्ति राष्ट्र सेवा के लिए ही पैदा हुआ है। अतः शिक्षा के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति में अपने राष्ट्र के प्रति अपर भक्ति की भावना का विकास किया जाना परमावष्यक है। फिस्ते की इस विचारधारा के परिणामस्वरूम जर्मनी में व्यक्ति की अपेक्षा राष्ट्र का मुख्य स्थान हो गया तथा व्यक्ति का पूर्ण रूप से दमन किया जाने लगा। उसी समय हीगल नामक महान दार्षनिक के लेखों ने भी सामाजिक उद्देष्य के संकुचित रूप का ही बलपूर्वक समर्थन किया। परिणामस्वरूप यह उद्देष्य अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया। हम देखते है कि जर्मनी में नाजी शासन के अन्तर्गत व्यक्ति को हर प्रकार से दबाया गया। समाचार-पत्रों का गला घोंट कर केवल नाजी पार्टी के प्रति निष्ठा एवं आज्ञा-पालन को ही प्रत्येक व्यक्ति का एकमात्र कर्तव्य बना दिया गया था। इस उद्देष्य को प्राप्त करने के लिए जर्मनी में शिक्षा का केन्द्रीकरण कर दिया गया, जिससे राज्य की आवष्यकताओं पूरी होती रहें। संक्षेप में शिक्षा का का सामाजिक उद्देष्य अपने संकुचित अर्थ मंे इस बात पर बल देता है कि मानवीय जीवन के प्रत्येक अंग का पूर्णरूपेण समाजीकरण हो जाये।

सामाजिक उद्देष्य का व्यापक अर्थ

समाजवाद के उदार रूप (जनतंत्रवाद समाजवाद) में सामाजिक उद्देष्य के व्यापक अर्थ के व्यापक अर्थ पर बल दिया जाता है। जनतंत्रात्मक समाजवाद में समाज के महत्व को तो स्वीकार किया जाता है, परन्तु व्यक्ति समाज के सम्मुख नगण्य नहीं माना जाता। उसे इस उद्देष्य के उग्र रूप की भांति आँख मींचकर बिना सोचे-समझे राष्ट्रहित के लिए प्राणों की बाजी लगाने के लिए बाध्य नहीं किया जाता, अपितु वह स्वतंत्रतापूर्वक अपने अधिकार तथा कर्तव्यों तथा कर्तव्यों का पालन करके राष्ट्र की तन,मन और धन से सेवा करता है। समाजवाद का यह उदार रूप वांछनीय है। इस प्रकार का समाजवाद अमरीका, इंग्लैंड, तथा भारतवर्ष जैसे जन्तान्त्रमक राष्ट्रों में पाया जाता है। चूँकि जनतंत्रवादीयों का अटल विष्वास है कि राष्ट्र को उन्नति के षिखर पर ले जाने के लिये व्यक्तियों को सच्चा नागरिक बनाना परमावष्यक है इसलिए उक्त जनतंत्रात्मक राष्ट्रों ने समाजिक उद्देष्य के व्यापक अर्थ को अलग-अलग रूप से स्वीकार करके अपने यहां शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार से की है कि प्रत्येक व्यक्ति समाज-सेवा की भावना से ओत-प्रोत होकर सच्चा नागरिक बन जायें।

जनतंत्र में सच्ची नागरिकता एक चुनौती है। इसका कारण यह है कि नागरिकता के लिये अनेक बौद्विक, समाजिक तथा नैतिक गुणों की आवष्यकता होती है। इन सभी गुणों को बालकों की रूचियों, योग्यताओं तथा क्षमताओं के अनुसार विकसित करना परम आवष्यक है। अतः बालक को सच्चा नागरिक बनने के लिए उसकी समस्त शक्तियों को पूर्णरूपेण विकसित करने के लिए उसे ऐसे अवसर प्रदान करने पड़ते हैं जिनके आधार पर वह अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों को समझ कर अपने राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनितिक समस्याओं के विषय में स्पष्ट तथा स्वतंत्र रूप से चिन्तन कर सके एवं उन्हें सरलतापूर्वक सुलझा सके। ध्यान देने की बात है कि व्यक्ति समाज की सेवा उसी समय कर सकता है जब उसकी समस्त शक्तियाँ विकसित हो चुकी हों तथा वह किसी पर भार न हो। ऐसा व्यक्ति अपने स्वार्थ के वषीभूत होकर अन्य व्यक्तियों को कष्ट नहीं देना चाहता अपितु वह अपनी प्रत्येक क्रिया के द्वारा समाज का भला करना चहता है। बालक की शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिसे वह अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को विकसित करते हुए अपनी योग्यताओं तथा क्षमताओं के अनुसार स्वतंत्र नागरिक के रूप में राष्ट्र की सेवा कर सके। चूँकि भारतवर्ष अब एक जन्तान्त्रमक समाजवादी राष्ट्र है, इसलिए अब हमारी शिक्षा का मुख्य उद्देष्य सच्चे, इमानदार तथा कर्मठ नागरिक उत्पन्न करना है। इस उद्देष्य के अनुसार हमारे स्कूलों ने अब स्वंय एक आदर्ष समाज का रूप धारण कर लिया है। उनमें प्रेम तथा आत्म- त्याग की भावना का सुन्दर एवं उत्तम वातावरण दिखाई देता है। पाठ्यक्रम का अर्थ अब संकुचित न होकर व्यापक लिया जाता है तथा बालकों को विभिन्न विषयों एवं सामाजिक क्रियाओं द्वारा नागरिकता की शिक्षा दी जाती है। उन्हें उनके अधिकारों तथा राष्ट्र के प्रति कर्तव्यों से भी अवगत कराया जाता है एवं उनमें प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्र सेवा की भावना जागृत की जाती है। इस प्रकार से भारतीय स्कूलों में बालकों के सम्मुख ऐसा वातावरण प्रस्तुत किया जाता है जिससे वे व्यक्तिगत विभिन्नता के आधार पर अपने-अपने व्यक्तित्व का विकास भी कर सकें तथा अपने राष्ट्र की तन,मन और धन से सेवा भी करते रहें। बागले तथा डीवी आदि शिक्षाषास्त्रियों ने भी सामाजिक उद्देष्यों के व्यापक अर्थ को ही स्वीकार किया है। परन्तु उन्होंने इस उद्देष्य को समाज सेवा तथा सामाजिक कुषलता की संज्ञा दी है। बागले को मत है कि सामाजिक कुषलता वह मापदण्ड है जिसके द्वारा शिक्षा सम्बन्धी प्रत्येक कार्य मुल्यांकन किया जा सकता है। अतः उसने अपनी पुस्तक एजुकेषन वैल्यूज में सामाजिक दृष्टि से कुषल व्यक्ति की निम्नलिखित तीन प्रमुख विषेषताएं बताई है-

आर्थिक कुषलता- आर्थिक कुषलता का अर्थ है व्यक्ति की उस योग्यता से है जिसके आधार पर वह दुसरों पर भार न बनकर अपनी आर्थिक आवष्यकताओं की पूर्ति स्वंय करता है।

निषेधात्मक नैतिकता- निषेधात्मक नैतिकता का तात्पर्य यह है कि जब व्यक्ति की अपनी इच्छाओं तथा आकांक्षाओं की पूर्ति दुसरे की आर्थिक कुषलता में बाधा डाले, तो वह अपने त्यागने के लिए तात्पर्य हो।

विधायक कुषलता- विधायक कुषलता का अर्थ यह है कि जब व्यक्ति की आकांक्षायों प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में समाज की उन्नति के लिए सहायक न हों तो वह उन्हें त्यागने के लिए तैयार हो।

जॉन डीवी के अनुसार ''सामाजिक कुषलता'' का अर्थ है व्यक्ति द्वारा सामूहिक क्रियाओं में भाग लेने की क्षमता। अतः बलकों के सम्मुख इस प्रकार का शैक्षिक वातावरण प्रस्तुत करना चाहिये जिसमें रहते हुए वे अपने पूर्व तथा भावी अनुभवों को समझ सकें तथा अपनी जन्मजात शक्तियों को विकसित करके अपने जीवन में आने वाली परिस्थितियों का सामना करके योग्य बन सके। अतः स्कूल का स्वरूप एक छोटे समाज के सामान होना चाहिये अर्थात उसे समाजिक जीवन का अधिकाधिक प्रतिनिधित्त्व करना चाहिये। इसके लिए पाठ्यक्रम में उन्ही विषयों को सम्मलित करना चाहिये जो सामाजिक जीवन के लिए उपयोगी हों। इससे सामाजिक क्रियाओं तथा स्कूल सम्बन्धी क्रियाओं में कई विषेष अन्तर नहीं रह जायेगा। जॉन डीवीने सामाजिक कुषलता का अर्थ स्पष्ट करते हुए स्वंय लिखा है- '' सबसे व्यापाक रूप मे सामाजिक कुषलता व्यक्ति में सामाजिक हित ही भावना का संचार करने एवं अपने व दूसरों के हितों को अलग-अलग रखने की भावना को नष्ट करने की प्रवृति है।''

संक्षेप में सामाजिक उद्देष्य के व्यापक अर्थ में ''शिक्षा नागरिकता के लिए'' तथा ''शिक्षा सामाजिक कुषलता के लिए'' होनी चाहिये। इस उद्देष्य के द्वारा प्रदान की हुई शिक्षा बालकों को अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों के प्रति जागरूक सामाजिक दोनों प्रकार की उन्नति सम्भव हैं।

शिक्षा के व्यक्तिक एवं सामाजिक उद्देष्यों का समन्वय

शिक्षा के वैक्तिक तथा सामाजिक उद्देष्यों के संकुचित तथा व्यापक रूपांे पर अलग-अलग प्रकाष डालने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अपने-अपने रूपों में ये दोनों उद्देष्य वांछनीय नहीं है। कारण यह है कि जहँा एक ओर वैयक्तिक उद्देष्य के समर्थ व्यक्ति को उसके विषेष व्यक्तित्व के विकास हेतु अनियंत्रित स्वतंत्रता प्रदान करने का विचार प्रस्तुत करते हैं, वहां दूसरी ओर सामाजिक उद्देष्य के दावेदार इस विचार के पक्ष में हैं कि समाज की भलाई के लिए व्यक्ति को अपने प्राणों की बाजी लगाने में भी नहीं हिचकिचाना चाहिये। व्यक्ति को इतना उछकल बना देना कि वह व्यक्ति का शोषण करने लगे उसे अपना दास बना ले, अच्छा आदर्ष नहीं है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब-जब और जहाँ-जहाँ इन दोनों उद्दष्यों के संकुचित रूपों को स्वीकार करके शिक्षा का संगठन किया गया, तब-तब व्यक्ति और समाज दोनों को अनेक दुष्परिणामों का सामना करना पड़ा है। व्यक्ति को समाज की तुलना मंे बड़ा समझना अथवा समाज को व्यक्ति की तुलना में अधिक महत्व देना उचित नहीं है। दोनों उद्देष्यों के चर्म रूपों में इतना अधिक विरोध है कि इन दोनों में समन्वय स्थापित करना असंभव-सा दिखाई पड़ता है। परन्तु हाँ, यदि इन दोनों उद्दष्यों के संकुचित रूपों को छोड़कर इनके व्यापक रूपों को स्वीकार किया जा सकता है। वास्तव में व्यक्ति और समाज में कोई आपसी विरोध नहीं है। ये दोनों एक-दुसरे पर निर्भर हैं।

व्यक्ति स्वाभाव से सामाजिक होता है। उसका सम्पूर्ण जीवन समाज का ही दिया हुआ है। उसने लिखना-पढना, बोलना-चलना तथा अन्य व्यक्तियों के साथ व्यवहार करना सभी कुछ समाज में ही रहते हुए सिखा है। अतः अपने सम्पूर्ण विकास के लिए वह समाज का ऋणी है। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व उसकी व्यक्तिगत वस्तु नहीं है अपितु वह एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा विष्व का वास्तविक कल्याण किया जा सकता हैं। यदि व्यक्ति को समाज से अलग कर दिया जाए तो उसका जीवित रहना नितान्त असम्भव है। ऐसी दषा में उससे यह आषा नहीं की जा सकती है कि वह समाज के विरूद्व कोई आचरण करेगा। जिस प्रकार बिना समाज के व्यक्ति की कल्पना करना भ्रमात्मक है ठीक उसी प्रकार बिना व्यक्तियों के समाज की कल्पना करना भी भारी भूल है। समाज व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिसकी रचना व्यक्तियों ने अपने हित के लिए ही की है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति में कुछ जन्मजात शक्तियाँ तथा विषेषतायें होती है। इन विषेषताओं के विकसित होने पर ही विभिन्न व्यक्तियों ने विभिन्न समयों में संस्कृति तथा सभ्यता एवं विज्ञान के क्षेत्रों में अपना-अपना योगदान दिया है। इसी से सामाजिक प्रगति का क्षेत्र बढ़ा तथा बढ़ता चला जा रहा है। ऐसी दषा में यह कहना अनुचित न होगा कि व्यक्ति के विकास का ही अर्थ है- सामजिक विकास। जब समाज की रचना तथा प्रगति व्यक्तियों के द्वारा ही हुई है तो व्यक्ति उसकी अवहेलना कभी भी नहीं कर सकता।

उपर्युक्त विवरण में स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति को अपने विकास के लिए समाज की तथा समाज को अपनी प्रगति के लिए व्यक्तियों की आवष्यकता है। यदि समाज में अच्छें तथा वांछनीय गुणों से युक्त व्यक्तियों का विकास होगा तो समाज दिन-प्रतिदिन उन्नति की और अग्रसर होता रहेगा अन्यथा उसे एक दिन रसातल में जाना ही होगा। अतः समाज को चाहिये कि वह व्यक्ति के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से विकसित करने के लिए समाज उचित परिस्थितियों को उपलब्ध करे तथा व्यक्ति को चाहिये कि वह अपनी यषाषक्ति समाज की सेवा करे तथा उसे शक्तिषाली बनाये। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति और समाज की प्रगति साथ-साथ चलती है। अतः दोनो मे किसी एक को प्रधानता देना अन्याय है। दोनों ही अपनी-अपनी उन्नति अथवा विकास के लिए एक दुसरे पर निर्भर है। इन दोनों मे किसी प्रकार का कोई भी विरोध नहीं है अपितु दोनों ही एक दुसरे के पूरक तथा सहायक है। शिक्षा के वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों उद्देष्यों भी एक दुसरे के पूरक तथा सहायक है दोनों उद्देष्य का प्रतिपादन दर्षन की दो महत्वपूर्ण विचारधाराओं ने किया है। व्यक्तिगत उद्देष्य का प्रतिपादन प्रकृतिवाद विचारधारा के द्वारा किया गया है तथा सामाजिक उद्देष्य का समर्थन आदर्षवादीयों ने किया है। यही नहीं, दोनो ही उद्देष्य शिक्षा की दो महत्वपूर्ण प्रवृतियों का भी परतिनिधित्व करते हैं। वैयक्तिक उद्देष्य, वैज्ञानिक प्रवृति पर आधारित है तथा सामाजिक उद्देष्य सामाजिक उद्देष्य प्रवृति पर। इन दोनों की प्रवृतियों ने आधुनिक शिक्षा के प्रभावित किया है। ऐसी दषा में ये दोनों ही उद्देष्य शिक्षा के महत्वपूर्ण उद्देष्य है तथा एक दुसरे के पूरक और सहायक हैं। अब तो आवष्यकता इस बात की है कि शिक्षा के द्वारा न तो व्यक्ति को इतना उछखल बना दिया जाये कि वह समाज की अवहेलना करने लगे और न ही समाज को इतना सबल बना दिया जाये कि वह व्यक्ति का दमन और संकुचन करके उसे अपना दास ही बना ले। अतः व्यक्ति दोनों के विकास तथा प्रगति हेतु शिक्षा के दोनों वैयक्तिक तथा सामाजिक उद्देष्यों के मध्य का रास्ता निकाल लिया जाये जिससे व्यक्ति अपनी यषाषक्ति समाज को सबल बना सके तथा समाज व्यक्ति के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से विकसित करने के लिए वांछनीय परिस्थियों को उपलब्ध कर सके। इस दृष्टि से यदि हम वैयक्तिक उद्देष्य का अर्थ आत्माभूति तथा सामाजिक उद्देष्य का अर्थ समाज सेवा स्वीकार कर लें तो दोनों उद्देष्यों में समन्वय सरलतापूर्वक स्थापित हो सकता है। दोनों उद्देष्यों के व्यापक रूपों में समन्वय से शिक्षा की ऐसी योजना बनाई जा सकेगी द्वारा दोनों बातें सम्भव हो सकेंगी - (1) बालक के व्यक्तित्व का विकास, तथा (2) सामाजिक उन्नति।

रास का भी यह मत है - ‘‘वास्तव में जीवन और शिक्षा के उद्देष्यों के रूप में आत्म-विकास तथा समाज सेवा में कोई विरोध नहीं है, क्योंकि दोनों एक ही है।’’

शिक्षा के वैयक्तिक तथा सामाजिक उद्देष्यों के बीच दार्षनिक ढंग से भी समन्य किया जा सकता है। रास तथा नन दोनों शिक्षा दार्षनिकों ने इन उद्देष्यों के बीच समन्वय स्थापित करने के लिए दार्षनिक प्रणाली को ही अपनाया है। रास ने वैयक्तिकता ने निम्न दो रूप माने हैं -

(1) आत्माभिव्यक्ति

(2) आत्मानुभूति

आत्म-अभिव्यक्ति में आत्म का तात्पर्य है- ‘‘ जैसा में उसे चाहता हूँ’’। इसके अन्तर्गत व्यक्ति की मूर्तिमान आत्मा होती है। यही नहीं, इसमें आत्म-प्रकाषन की भावना होती है। इस भावना के वषीभूत होकर व्यक्ति अपने मूल-प्रवृतियों के अनुसार बिना किसी प्रतिबन्ध के स्वछन्द रूप से कार्य करता है’ चाहे समाज को लाभ हो अथवा हानि। इस दृष्टि में आत्माभिव्यक्ति व्यक्ति के मस्तिष्क की वह दषा है जिसमें व्यक्ति अनियंत्रित रहते हुए स्वछन्द रूप से कार्य करता है। इस दषा में समाज कल्याण अथवा विनाष का कोई ध्यान नहीं होता। परिणामस्वरूप समाज में एक प्रकार की अवस्था का उत्पनन हो जाना स्वाभाविक है। परन्तु व्यक्ति के मस्तिष्क में आत्म-प्रकाषन की भावना सदैव ही नहीं रहती है। विकास तो निरन्तर ही होता हैं। अतः इस अवस्था व्यक्ति शैने-षैने आत्मानुभूति की अवस्था को भी प्राप्त कर लेता है। दुसरे शब्दों में, उसे अपनी आत्मा का बोध अथवा ज्ञान हो जाता है। आत्मानुभूति में ‘आत्म’ का अभिप्रायः है- ‘‘जैसा में उसका होना चाहता हूँ’’। इसमे आत्म वह आदर्ष आत्म है जिसको प्राप्त करने के लये व्यक्ति सदैव प्रयत्नषील रहता है। वास्तव मे आत्मानुभूति व्यक्ति के मस्तिष्क की वह दषा है उसमें व्यक्ति अपने आपको नियंत्रित रखते हुए समाज की सेवा करना अपना परम कत्तवय समझता है

तथा उसकी आत्मा को ऐसे कार्यों को करने में सुख और शान्ति प्राप्त होती हैं, जिससे समाज का लाभ अथवा कल्याण होता हो। कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मानुभूति में व्यक्ति की आत्मा का परिष्कार हो जाता है। जिससे व्यकित अपने उपर आवष्यकतानुसार नियंत्रण रखकर समाज को किसी भी प्रकार की क्षति पहुंचने का स्वप्न भी देखता है अपितु वह सदैव इस बात का प्रयत्न करना है कि उसके शरीर अथवा शरीर अथवा से अन्य व्यक्तियों का भला ही होता रहे तथा समाज उन्नति के षिखर पर चढ़ता रहे।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है की आत्मानुभूति एक महान और उच्च आदर्ष है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति तथा समाज दोनों का ही हित सम्भव है। चूँकी सभी की भलाई प्रत्येक की भलाई है, इसलिए शिक्षा के दोनों उद्देष्यों के व्यापक रूपों को समन्वित करके शिक्षा का एक ही उद्देष्य होना चाहिये और वह है- बालक में आत्मानुभूति को उत्पन्न करना। इस उद्देष्य द्वारा बालक के व्यक्तिगत विकास के साथ-साथ सामाजिक प्रगति भी सम्भव है। रास ने इस बात का समर्थन करते हुए बड़े सुन्दर ढंग से लिखा है- ‘‘ जिस सामाजिक वातावरण में रहकर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास करता है उससे अलग होने पर उसकी वैयक्तिकता का कोई मूल्य की नहीं रह जाता तथा उसका व्यक्तित्व निरथर्क हो जाता हैं आत्मबोध केवल सामाजिक सेवा द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है तथा ऐसे व्यक्तियों के द्वारा ही समाज के लिए समाजिक आदर्षो को उपस्थित किया जा सकता है, जिनके व्यक्तित्व का समुचित विकास हो गया हो। यह चक्र तोड़ा नहीं जा सकता है।‘‘

प्रो. टी. पी. नन के अनुसार व्यक्ति समक जा ऋणी है। उसके विकास में समाज सदा से ही सहायक रहा है तथा भविष्य में भी रहेगा। ऐसी दषा में यदि बालक को समाज का रचनात्मक सदस्य बनना है तो उसे केवल अपना ही विकास नहीं करना अपितु समाज की उन्नति में भी यषाषक्ति पूरा-पूरा योग देना है। नन का अटल विष्वास था की व्यक्ति का व्यक्तित्व उसकी व्यक्तिगत वस्तु नहीं है अपितु यह एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा समाज का वास्तविक हित हो सकता है, क्योंकि सभी की भलाई से ही प्रत्येक की भलाई सम्भव है, इसलिए व्यक्ति के विकास से नन का तात्पर्य आदर्ष आत्मानुभूति को प्राप्त करना था। नन ने लिखा है,‘‘व्यक्तित्व का विकास सामाजिक वातावरण में ही होता है जहाँ कि सामाजिक रूचियों और क्रियाओं का उसे भोजन मिलता है।’’

इस प्रकार षिक्षण की योजना ऐसी होने चाहिये कि व्यक्ति और समाज दोनों के बीच में समन्वय स्थापित किया जा सके। इससे व्यक्ति और समाज दोनों की प्रगति सम्भव है। अतः जहाँ एक ओर बालक को उसके विकास हेतु पूर्ण अवसर प्रदान किये जाने चाहिये वहाँ दूसरी ओर शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात बालक को भी नागरिक के रूप में समाज की उन्नति मे यषाषक्ति योगदान देना चाहिये। ऐसा दषा में में जहाँ एक ओर प्रत्येक माता-पिता, गुरूजन तथा राज्य का कत्र्तव्य है कि वे बालकों को सर्वांगीण विकास करने के लिए उन्हें पूर्ण अवसर प्रदान करें वहाँ दूसरी ओर बालकों का भी यह कत्र्तव्य है की वे जब नागरिक जीवन में प्रवेष करें तो वे भी समाज की यषाषक्ति सेवा करें।

निष्कर्ष

व्यक्ति और समाज का आपस में घनिष्ठ संबंध है। व्यक्तियों से ही समाज बनता है। समाज के अभाव में व्यक्तियों का कोई अस्तित्व महत्व नहीं है। इस घनिष्ठ आपसी संबंध के होते हुए भी भिन्न-भिन्न विद्वानों ने किसी एक को अधिक महत्व दिया है। कुछ विद्वान समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्व देते हैं। उनके अनुसार यदि व्यक्ति समस्त व्यक्ति अपना अपना विकास एवं प्रगति कर ले तो समाज का विकास स्वतः ही हो जाएगा। अतः व्यक्ति के विकास पर ही अधिक बल देना चाहिए। समाज का अस्तित्व व्यक्ति से अलग अपना कोई अस्तित्व नहीं है। इसके विपरीत कुछ विद्वानों ने व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व दिया है उनके अनुसार समाज के हितों को का ध्यान पहले रख जाना चाहिए तथा समाज के हितों के लिए व्यक्ति हितों का बलिदान किया जा सकता है। समाज एवं व्यक्ति के इस सापेक्ष महत्व को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के वैयक्तिक उद्देष्यों को अधिक देते हैं तथा अन्य सामाजिक उद्देष्य को अधिक महत्व देते हैं। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देष्य सामाजिक विकास होना चाहिए। यह सत्य है कि शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देष्यों को लेकर विद्वानों में मतभेज है परंतु वास्तव में इन उद्देष्य में समन्वय स्थापित होना अनिवार्य है।

संदर्भ ग्रंथ

1. अरूण कुमार सिंह - व्यक्तित्व का मनोविज्ञान - युगल पुस्तक
2. डॉ. डी.एन. श्रीवास्तव व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा 1999।
3. डॉ. सीताराम जायसवाल, व्यक्तित्व सिद्धान्त, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना 1981।
4. मुनि धर्मेष कुमार प्रक्षाध्यान, व्यक्तित्व विकास, जैन विष्व भारती लाडनूँ 2008।
5. शर्मा पी. के. (2014) व्यक्तित्व विकास, भारती श्री प्रकाषन।
6. अस्थाना एम एवं वर्मा के (1999) व्यक्तित्व मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली।

■ ■ ■